इकाई 2 समाज में ज्योतिष की उपयोगिता

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 समाज में ज्योतिष की उपयोगिता

2.2.1 सिद्धान्त स्कन्ध की समाज में उपयोगिता

2.2.2 संहिता स्कन्ध की समाज में उपयोगिता

2.2.3 होरा स्कन्ध की समाज में उपयोगिता

2.3 ज्योतिष शास्त्र के अन्य प्रमुख विषयों की समाज में उपयोगिता

2.3.1 रत्न विज्ञान

2.3.2 ज्योतिष और आयुर्वेद

2.4 सारांश

2.5 शब्दावली

2.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.7 बोध प्रश्न

2.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आपः

- ज्योतिष शास्त्र के तीनों स्कन्धों के बारे में विस्तृत ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- ज्योतिष शास्त्र में उपलब्ध वैज्ञानिक अंशों से अवगत हो पाएंगे।
- सिद्धांत– संहिता एवं होरा स्कन्ध की समाज में उपयोगिता को समझ पाएंगे।
- ज्योतिष के अन्य प्रमुख विषय किस प्रकार समाज के लिए उपयोगी है इसका ज्ञान होगा।
- ज्योतिष शास्त्र के अध्ययन में और अधिक रुचि जागृत होगी।

2.1 प्रस्तावना

संसार में समस्त ज्ञान विज्ञान का आधार वेद हैं। वर्तमान काल में जो हमें ज्ञान विज्ञान समृद्ध रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है उसके मूल में वेद ज्ञान ही निहित है । वेद पथ प्रदर्शक एवं ज्ञान के अथाह भंडार हैं ।इन वेदों के समुचित ज्ञान के लिए वेदांगों के अध्ययन की आवश्यकता होती है। वेदांग 6 हैं – 1–व्याकरण, 2– ज्योतिष 3– छन्द, 4– निरुक्त , 5– शिक्षा एवं 6 –कल्प । यथा –

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।।

(पाणिनीयशिक्षा – ४१–४२)

वेद रूपी शरीर के छन्द पैर, कल्प हाथ, ज्योतिष नेत्र, निरुक्त कर्ण, शिक्षा नासिका एवं व्याकरण मुख है । वेदांगों में ज्योतिष शास्त्र का विशेष महत्व है । जिस प्रकार मनुष्य बिना चक्षु–इन्द्रिय के किसी भी वस्तु का दर्शन करने में असमर्थ होता है, ठीक वैसे ही वेदशास्त्र या वेदशास्त्र विहित कर्मों को जानने के लिये ज्योतिष का अन्यतम महत्त्व सिद्ध है। भूतल, अन्तरिक्ष एवं भूगर्भके प्रत्येक पदार्थ का कालिक यथार्थ ज्ञान जिस शास्त्र से हो, वह ज्योतिष शास्त्र है। अतः ज्योतिष ज्योतिका शास्त्र है। ज्योतिष शास्त्र से त्रैकालिक प्रभाव को जाना जा सकता प्रातः–उत्थान से लेकर स्वप्न पर्यन्त की नित्यचर्या, सम्पूर्ण जीवनचर्या, गर्भ से लेकर मृत्यु तक और उसके बाद भविष्य की बातों, परलोक–पुनर्जन्म की बातों तथा भूतकाल की स्थिति को ज्योतिष अभिव्यक्त करता है। आचार्य वराहमिहिर बताते हैं कि अन्य जन्मों में जो भी शुभाशुभ कर्म किया गया हो, उसके फल तथा फलप्राप्ति के समय को यह शास्त्र वैसे ही स्पष्ट व्यक्त करता है, जैसे अन्धकारमें स्थित पदार्थों को दीपक व्यक्त कर देता है–

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पक्तिम्।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव ।।

(लघुजातक–राशि प्रभेदाध्याय –श्लोक 03)

इसी प्रकार–

कर्मार्जितं पूर्वभवे सदादि यत्तस्य पक्तिं समभिव्यनक्ति।

(बृहज्जातक १।३)

इसी कारण ज्योतिष शास्त्र को नेत्र कहा गया है। नेत्र का कार्य है सम्यक् अवलोकन। यह नेत्र मानव के सामान्य नेत्र के समान नहीं है, जिसमें भ्रम–लिप्सा एवं प्रमाद आदि के कारण दृष्टिदोष हो जाने से यथार्थ ज्ञान भी – मिथ्या प्रतीत होने लगता है, फलतः तथ्य से परे धारणा बन जाती है, किंतु वेदपुरुष का नेत्र एक ऐसा नेत्र है – एक ऐसी दिव्य दृष्टि है, जिस दृष्टि से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और समस्त जीव निकाय का प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष, व्यवहित– अव्यवहित समस्त कर्म स्पष्ट दृग्गोचर होने लगता है। वर्तमान समाज में ज्योतिष शास्त्र की अत्यंत उपयोगिता है। समाज को समुचित दिशा में ज्योतिष शास्त्र विभिन्न रूपों में मार्गदर्शन करता है। ज्योतिष शास्त्र तीन स्कंधों में विभाजित हैं –

1. सिद्धान्त स्कन्ध
2. संहिता स्कन्ध
3. होरा स्कन्ध

इन तीनों स्कंधों के अंतर्गत ज्योतिष शास्त्र के विभिन्न विषयों का समावेश होता है एवं ये तीनों स्कन्ध समाज में विभिन्न रूपों में अपनी उपयोगिता सिद्ध करते हैं। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम तीनों स्कंधों की समाज में उपयोगिता के विषय में अध्ययन करेंगे।

2.2 समाज में ज्योतिष की उपयोगिता

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम समाज में ज्योतिष शास्त्र की उपयोगिता को जानेंगे । वस्तुतः ज्योतिष शास्त्र की प्रतिपल समाज में अत्यंत उपयोगिता हैं क्योंकि यह शास्त्र विभिन्न रूपों में मानव समाज के लिए उपकारक है । हम प्रस्तुत विभाग के माध्यम से ज्योतिष शास्त्र के तीनों स्कंधों की उपयोगिता को समझने का प्रयास करते हैं।

2.2.1 सिद्धान्त स्कन्ध की समाज में उपयोगिता

सिद्धान्त स्कन्ध को परिभाषित करते हुये भास्कराचार्य अपने ग्रंथ सिद्धान्त शिरोमणि में लिखते हैं कि –

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालगणना मानप्रभेदः क्रमा–
च्चारश्च द्युषदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।
भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितैश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते
सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः।
(सिद्धान्त शिरोमणि मध्यमाधिकार श्लोक संख्या –06)

ज्योतिष शास्त्र के जिस स्कन्ध के अन्तर्गत सूक्ष्मतम से महत्तमकाल की गणना तथा मानों के भेद, ग्रहोंके चार, द्विविध गणित (व्यक्त एवं अव्यक्त), ग्रह–नक्षत्रों की गति–स्थिति एवं यन्त्र– परिचय आदि वर्णित हो, उसे सिद्धान्त स्कन्ध कहते हैं। इसके अतिरिक्त सिद्धान्त स्कन्धमें प्रमेय–विवरण, सृष्टि विचार, खगोल एवं भूगोल–विषयक चिन्तन, ग्रह–नक्षत्रों के वेध–यन्त्रोंके विज्ञानका विचार, ग्रहण–विचार, दिग्देश–कालगणना इत्यादि विषयों का सैद्धान्तिक एवं गणितीय विचार किया जाता है। सिद्धान्त स्कन्ध को गणित स्कन्ध के नामसे भी जाना जाता है। सूक्ष्म विभाजन की दृष्टि से गणित स्कन्ध के भी पुनः तीन विभाग माने जाते हैं, जो सिद्धान्त, तन्त्र एवं करणरूप में प्रतिष्ठित हैं। सिद्धान्त में ग्रहगणितगणना कल्पारम्भकाल से, तन्त्र युगारम्भ काल से एवं करण अभीष्ट शक से की जाती है। विस्तार से समाज में सिद्धान्त स्कन्ध के उपयोगिता को हम निम्न अंशों के माध्यम से समझ सकते हैं। यथा –

1. गणित शास्त्र का मूल
2. भारतीय काल गणना
3. वैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रतिपादक
4. ग्रह स्पष्ट एवं ग्रहण आदि का साधन

1. **गणित शास्त्र का मूल**– वर्तमान काल में गणित शास्त्र के महत्व से सभी भलीभांति परिचित हैं। आज गणित शास्त्र के माध्यम से विभिन्न वैज्ञानिक क्रियाओं का सम्पादन किया जाता है। चाहे व्यावहारिक क्रिया हो, कोई उच्च स्तरीय गणना, अनुपात, विभिन्न सूचनाओं का आकलन इत्यादि जो भी कार्य किए जाते हैं उन सभी क्रियाओं का आधार गणित ही होता है। वर्तमान काल में जो गणित परंपरा हमें दिखाई देती है इसका मूल भी ज्योतिष शास्त्र ही है क्योंकि हमारे यहाँ अंक गणित, बीज गणित, रेखागणित, त्रिकोणमिति, चलन–कलन इत्यादि विषयों का प्रतिपादन एवं स्वतंत्र ग्रन्थ ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों द्वारा ही रचित है। आज भी इन ग्रन्थों का ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्त स्कन्ध के अंतर्गत विश्वविद्यालयों में अध्ययन–अध्यापन किया जाता है। अतः गणित शास्त्र का मूल ज्योतिष शास्त्र का सिद्धान्त स्कन्ध ही है जो कि समाज में अपनी उपयोगिता स्वयं स्थापित करता है।

2. **भारतीय काल गणना**– ज्योतिष शास्त्र को काल विधान शास्त्र कहा जाता है। काल का विवेचन सूर्य सिद्धांत ग्रंथ में इस प्रकार किया गया है –

लोकानामन्तकृत् कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः ।
स द्विधा स्थूलसूक्ष्मत्वान्मूर्तश्चामूर्त उच्यते ।।
प्राणादिः कथितो मूर्तस्त्रुट्याद्योऽमूर्तसंज्ञकः ।
शड्भिः प्राणैर्विनाडी स्यात् तत्षष्ट्या नाडिका स्मृता ।।

(सूर्यसिद्धान्तः मध्यमाधिकारः श्लो.सं १०–११)

काल के दो भेद कहे गए हैं एक तो जो सभी का विनाश या मृत्यु का कारण है वह अंतकृत काल है एवं दूसरा भेद कलनात्मक है। अर्थात् ऐसा काल जिसकी गणना की जा सकती हो इस कलनात्मक काल के भी दो भेद होते हैं एक मूर्त काल एवं दूसरा अमूर्त काल। व्यवहार उपयोगी काल को मूर्त काल एव जो अत्यंत सूक्ष्म होता जिसका सामान्य व्यवहार में उपयोग नहीं होता है वैसा काल अमूर्त काल कहलाता है।

मूर्त काल को निम्नलिखित रूप से समझ सकते हैं –

१ प्राण = १० दशदीर्घाक्षर–उच्चारणकाल = १० विपल = ४ सेकेण्ड ।

६ प्राण = ६० विपल =१पल= २४ सेकेण्ड

६० पल (विनाडी) = १ घटी (दण्ड, नाडी) = २४ मिनिट

६० घटी = २४ घण्टे =१ दिन(अहोरांत्र)

३० दिन (अहोरात्र) = १ मास

१२ मास = १ वर्ष

इसी प्रकार अमूर्त काल को परिभाषित किया गया है कि –

सूच्या भिन्ने पद्मपत्रे त्रुटिरित्यभिधीयते ।
तत् षष्ट्या रेणुरित्युक्तो रेणुषष्ट्या लवः स्मृतः ।
तत् षष्ट्या लीक्षकं प्रोक्तं तत्षष्ट्या प्राण उच्यते ।।

(नारदपुराण)

	भारतीयकाल		पाश्चात्यकाल
१ त्रुटि	= सुई के द्वारा पद्मपत्रभेदनकाल	=	१/३२४०००० सेकेण्ड
१ रेणु	= ६० त्रुटी	=	१/५४००० सेकेण्ड
१ लव	= ६० रेणु	=	१/६०० सेकेण्ड
१ लीक्षक	= ६० लव	=	१/१५ सेकेण्ड
१ प्राण	= ६० लीक्षक = १० दीर्घाक्षर–उच्चारणकाल	=	४ सेकेण्ड

इसी मूर्त तथा अमूर्त काल का वैज्ञानिक चिंतन ज्योतिष शास्त्र में किया गया हैं। भारतीय काल गणना में काल के नौ भेद भी माने गए हैं जिनके परस्पर सामंजस्य से विभिन्न व्रत पर्व ऋतु इत्यादि का समयानुकाल परिपालन ज्योतिष शास्त्र की ही विशेषता है। विभिन युगों का वर्ष प्रमाण सृष्टि आरम्भ काल का ज्ञान प्रलय आदि के वर्षों का ज्ञान भी ज्योतिष शास्त्रीय काल गणना के माध्यम से ही किया जाता है। वार क्रम, मासों के नाम इत्यादि का पूर्ण वैज्ञानिक चिंतनकिया गया है। भारतीय काल गणना अत्यन्त विशाल होने के साथ साथ पूर्णतः वैज्ञानिक भी है जो कि समाज के लिए अत्यंत उपयोगी है।

3. **विभिन्न वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रतिपादक**– ज्योतिष शास्त्र के संहिता स्कन्ध में विभिन्न वैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है।यथा –

   1. गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त
   2. परिधि व्यास का संबंध
   3. भूभ्रमण सिद्धान्त

1. **गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त** – वर्तमान काल में गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत को पाश्चात्यों की देन कहा जाता है। जन सामान्य में जन श्रुति है कि गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त के

प्रतिपादक 17 वी शताब्दी के विद्वान न्यूटन है। जबकि इस सिद्धान्त के विषय में ज्योतिष शास्त्र के भास्कराचार्य जी ने 12 वी शताब्दी में अपने ग्रंथ सिद्धान्त शिरोमणि में इसका प्रतिपादन किया। यथा –

आकृष्टशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरुं स्वाभिमुखं स्वशक्तया।
आकृष्यते तत् पततीव भाति समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे।।

(सिद्धान्त शिरोमणि गोलाध्याय भुवन कोश –श्लोक संख्या 06)

अर्थात पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण शक्ति है, जो आकाश के गुरु पदार्थों को खीचकर अपने धरातल में ले आती है। पृथ्वी में यह एक ईश्वरदत्त गुरुत्वाकर्षणशक्ति सदा वर्तमान रहती है, जो आकाश में अपनी सीमा के भीतर भी किसी भी भारी पदार्थ को खींचकर अपने धरातल में ले आती है और जो साधारण द्रष्टा को आकाशीय पदार्थों का पृथ्वी में गिरने का सा अनुभव होता है। इस प्रकार समाज में उपयोगी ज्ञान आकर्षण सिद्धान्त का मूल ज्योतिष शास्त्र है ।

2. **परिधि व्यास सम्बन्ध**– परिधि एवं व्यास के सूक्ष्म संबंध भी ज्योतिष शास्त्र के ग्रन्थों में प्रतिपादित किया गया है वर्तमान में परिधि व्यास का अनुपात 22/7 के रूप में प्रसिद्ध है जिसे पाई के नाम से भी जाना जाता है, जबकि इसका अत्यंत सूक्ष्म मान आर्यभट्ट जी ने अपने ग्रंथ आर्यभटीय (सन् 476) बताया है कि –

चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथासहस्त्राणां।
अयुतद्वयविष्कम्भस्यासन्नो वृत्तपरिणाहः।।

(आर्यभटीय –गणितपाद– श्लोक 10)

अर्थात 20000(बीस हजार) व्यास के वृत्त की आसन्न परिधि 62832 होती है । इसी अनुपात को आधार मानकर भास्कराचार्य द्वितीय ने भी अपने ग्रंथ लीलावती में व्यास परिधि के अनुपात को दर्शाया है यथा–

व्यासे भनन्दाग्निहते विभक्ते खबाणसूर्यैः परिधि च सूक्ष्मः।
द्वाविंशतिघ्ने विहृतेऽथशैलैः स्थूलोऽथवा स्याद् व्यवहारयोग्यः।।

(लीलावती, क्षेत्रव्यवहार श्लोक संख्या 42)

अर्थात् 1250 व्यास के वृत्त की परिधि का 3927 होता है एवं स्थूल मान के अनुसार 7 व्यास की परिधि का मान 22 होता है । इस प्रकार परिधि व्यास सम्बन्ध के सूक्ष्म मान ज्योतिष शास्त्र में ही प्रतिपादित किया गया है ।

3. **भूभ्रमण सिद्धान्त**– पृथ्वी के अक्ष भ्रमण नामक वैज्ञानिक तथ्य के भी प्रतिपादक लोग कैपलर को मानते हैं जबकि इस सिद्धान्त का भी प्रथम प्रतिपादन ज्योतिष शास्त्र के आचार्य आर्यभट्ट ने अपने ग्रंथ में किया है ।

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत् ।
अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लंकायाम् । ।

(आर्यभटीय– गोलपाद– श्लोक संख्या–09)

नाव में बैठकर पूर्व की ओर जाने पर आसपास की अचल वस्तुएं जिस प्रकार विपरीत दिशा पश्चिम में जाती हुई दिखती है, उसी प्रकार अचल नक्षत्र मण्डल को लंका से पश्चिम की ओर जाते देखते हैं।आर्यभट्ट ने यहाँ स्पष्ट प्रतिपादन किया है कि नक्षत्र– मण्डल स्थिर है तथा पृथ्वी अपनी धुरी पर पश्चिम से पूर्व

की ओर घूमती है । इसी प्रकार **"प्राणेनैति कलां भूः"** के माध्यम से भूमि 24 घण्टे में 360^0 अक्ष भ्रमण को बताया है ।

4. **ग्रह स्पष्ट, एवं ग्रहण आदि का साधन**– सिद्धान्त स्कन्ध का मुख्य प्रतिपाद्य विषय ग्रह स्पष्ट है क्योंकि स्पष्ट ग्रह के माध्यम से ही स्पष्ट फल की प्राप्ति होती है यथा –

यात्रा विवाहोत्सवजातकादौ खेटैः स्फुटैरेव फलस्फुटत्त्वम्।
स्यात् प्रोच्यते तेन नभश्चराणां स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्यकृद्या।।

(सिद्धान्तशिरोमणि– स्पष्टाधिकार– श्लोक संख्या–01)

ज्योतिष शास्त्र ग्रहों की आकाशीय स्थिति के अनुसार उनका चराचर जगत पर पड़ने वाले प्रभाव का विवेचन करता है। ग्रहों की आकाशीय स्पष्ट स्थिति का साधन ज्योतिष शास्त्र के हमारे ऋषियों ने अपने तपोबल के माध्यम से गणित प्रक्रिया के माध्यम से ग्रहों को स्पष्ट करने की जटिल प्रक्रिया को बड़े वैज्ञानिक रूप से प्रतिपादित किया है। आकाशीय विभिन्न घटनाओं का विवेचन जैसे ग्रहण आदि कब घटित होगी इसका गणित के माध्यम अत्यंत अल्प धन व्यय से सटीक समय का साधन ज्योतिष शास्त्र की सबसे बड़ी समाजोपयोगिता है। इसी गणित प्रक्रिया के आधार पर ही पूरा ज्योतिष शास्त्र है। चाहे पंचांग हो कुंडली हो या संहिता गत फलादेश हो उस सब का आधार सिद्धांत स्कन्ध की ग्रह स्पष्टीकरण प्रक्रिया ही है।

2. **संहिता स्कन्ध की समाज में उपयोगिता**–संहिता स्कन्धमें ग्रह– नक्षत्रोंके द्वारा भूपृष्ठपर पड़नेवाले सामूहिक प्रभावका विवेचन किया जाता है। इस स्कन्धको भौतिक एवं वैश्विक ज्योतिष भी कहा जाता है। संहिता स्कन्ध के विषयमें वराहमिहिर ने लिखा है–

ज्योतिःशास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितम्,
तत्कात्स्न्योपनयनस्य नाम मुनिभिः संकीर्त्यते संहिता ।

(बृहत्संहिता उपनयनाध्याय श्लोक संख्या 09)

वस्तुतः सिद्धान्त और होरा स्कन्धों का संक्षेप में समवेत विवेचन ही संहिता है। संहिता स्कन्ध में ग्रहों की गति, ग्रहयुति, मेघलक्षण, वृष्टि–विचार, उल्का–विचार, भूकम्प–विचार, जलशोधन, विभिन्न शकुनों का विचार, वास्तुविद्या तथा ग्रहणादि का समस्त चराचर जगत् पर पड़ने वाले सामूहिक प्रभाव इत्यादि का विचार किया जाता है। संहिता के विषयोंको भी तीन प्रकार से विभाजित किया जा सकता है, यथा–(१) पंचांगविषयक, (२) राष्ट्रविषयक, (३) व्यक्तिविषयक।

1) **पंचांगविषयक** – तिथि–वार–नक्षत्र–करण– योगके द्वारा समष्टिगत चिन्तन पंचांगविषयक संहिता के विषय होते हैं। इसके अन्तर्गत मुहूर्त आदि का विधान होता है। तिथि–वार–नक्षत्र–योग और करण आदि के आधार पर कार्य के अनुरूप समय का चयन करना ही मुहूर्त कहलाता है। त्रिस्कन्धज्योतिष शास्त्र में मुहूर्त सम्बन्धी विषय संहिता स्कन्ध के अन्तर्गत माने गये हैं । लोक व्यवहार में इनका अधिक उपयोग होने के कारण शनैः शनैः इनका पृथक् एवं स्वतन्त्र अस्तित्व बनता गया मुहूर्तों का व्यवहार वैदिककाल से ही होता आ रहा है । जैसा पहले कहा जा चुका है परन्तु वैदिककाल में मुहूर्तों के नियामक मास, नक्षत्र और तिथि ही प्रमुख रूप से होते रहे हैं। पुराण काल में भी अधिकतर उत्तरायण–दक्षिणायन–मास–तिथि और नक्षत्रों का ही उपयोग मुहूर्तों में किया गया है। यथा शिव के विवाह–मुहूर्त का वर्णन करते हुये कहा गया है–आज से तीसरे दिन चन्द्रमा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में जायेगा। उस समय मैत्र नामक शुभ

मुहूर्त होगा । पुराणों में कहीं कहीं भद्रा एवं योगों का भी उल्लेख मिलता है। परन्तु ज्योतिष–सिद्धान्त–काल के अनन्तर मुहूर्तों में तिथि–वार–नक्षत्र–योग–करण (पंचांगशुद्धि) के साथ–साथ चन्द्रबल एवं लग्नबल का भी विचार किया जाने लगा। मनुष्य द्वारा किये जाने वाले सभी कार्य मुहूर्त के अनुसार ही किये जाते रहे हैं । यही कारण है कि मुहूर्तों का सीधा सम्बन्ध जनमानस से है। दैनिक व्यवहार में आने के कारण ही मुहूर्तों का ज्योतिष–शास्त्र में एक पृथक् अस्तित्व है और ज्योतिष शास्त्र में एक स्वतन्त्र धारा के रूप में मुहूर्तशास्त्र विद्यमान है ।

2) **राष्ट्रविषयक**– प्राकृतिक उत्पात–भूकम्प– वर्षा इत्यादि विषयों का चिन्तन राष्ट्रविषयक संहिताविभाग में समाहित होते हैं। संहिता स्कन्ध विभिन्न प्राकृतिक घटनाओं के विषय में सभी को समुचित मार्गदर्शन प्रदान करता है जैसे – संहिता स्कन्ध में सूर्यादि ग्रहों की गति इत्यादि के कारण चराचर जगत पर पड़ने वाले प्रभाव का विवेचन, ग्रहों के परस्पर युद्ध, उदय एवं अस्त , ग्रहों का समागम,नक्षत्र विशेष का प्रभाव, दिग्दाह विवेचन, भूकंप लक्षण एवं उसका फल, उल्कापात का वर्णन, इंद्रधनुष का विवेचन, उत्पातों का कारण एवं उनका चराचर जगत पर पड़ने वाले प्रभाव का विवेचन, सन्ध्या काल के स्वरूप से फल कथन, वात–चक्र का विवेचन, धूलगमन का विवेचन, वायु की ध्वनि से शुभाशुभ का निर्णय, ग्रहण आदि घटनाओं का फल विवेचन किया जाता है।

वास्तु शास्त्र की समाज में उपयोगिता – वास्तु शास्त्र भी इसी स्कन्ध के अंतर्गत आता है जिसकी वर्तमान समाज में अत्यंत उपयोगिता है । हम सभी जानते हैं कि प्रकृति ने प्रत्येक जीव को अपनी आवश्यकतानुकूल वास–स्थान निर्माण करने की क्षमता एवं कौशल प्रदान किये हैं इसलिये ही इन प्राकृतिक नियमों से आबद्ध होकर अपने सुख–दुःख का अनुमान कर प्राणी नित–नये भयमुक्त वातावरण में सुरक्षित स्थान की खोज करता रहता है । इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति वास्तु शास्त्र के माध्यम से होती है क्योंकि वास्तु शास्त्र वह शास्त्र है जो मनुष्य को हितकाम अर्थात् कल्याण मार्ग की ओर अग्रसर करता है क्योंकि विश्वकर्मा जी स्वयं कहते हैं कि –

वास्तुशास्त्रं प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया ।

मानव को धर्म–अर्थ–काम द्वारा मोक्ष की प्राप्ति हेतु निवास स्थान की आवश्यकता प्रतिपल होती है जिसकी पूर्ति वास्तु शास्त्र के नियमानुसार ही संभव है, क्योंकि कुवास्तुजन्य निर्मित भवन मानव को अनेक प्रकार के कष्टों को प्रदान करता है जिससे मानव अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में असमर्थ रहता है । संपूर्ण वास्तु शास्त्र सबसे पहले प्रकृति का विचार करता है और प्रकृति के निर्माण में जो पंचमहाभूत प्रधान है वह मनुष्य शरीर में भी विद्यमान है इन्हीं का समावेश भवन निर्माण में करके भवन को सुख संपन्न युक्त बनाया जाता है । विज्ञान के अनुसार प्रकृति के जड़ एवं निर्जीव पदार्थों को पृथ्वी पर विस्तृत व गतिशील इलेक्ट्रॉन प्रोटॉन न्यूट्रॉन सजीव कर गतिशील करते हैं । वास्तु शास्त्र की धारणा यही है कि प्रकृति एवं मनुष्य में सामंजस्य बना रहना जरूरी है । वास्तु शास्त्र का सही अर्थ है कि भवन का प्रत्येक भाग अपनी विशेषता को सक्रिय कर दे । जब मुख्य द्वार से घर में प्रवेश करें तो उसकी सारी चिंता श्रम तनाव दूर हो जाएं शयनकक्ष में जाए तो गहरी नींद का आनंद मिले भोजन करें तो भोजन का रस प्राप्त हो रति गृह में काम के भोग का आनंद ले, पूजा गृह में देव ध्यान में मग्न हो सके । वास्तु शास्त्र ऐसे ही भवन का विधान करता है जो न केवल सुंदर कलाकृतियों से

युक्त हो अपितु सुख शांति व समृद्धिदायक हो । अतः साम्प्रतिक युग में वास्तु शास्त्र का अत्यधिक महत्व है ।

वर्षा विज्ञान– प्राचीन कालके ऋषि–मुनियोंके पास आज की तरह न तो विकसित वेधशालाएँ थीं और न सूक्ष्म परिणाम देनेवाले आधुनिकतम वैज्ञानिक उपकरण, फिर भी वे अपने अनुभव तथा अतीन्द्रिय ज्ञानके सहारे आकाशीय ग्रह–नक्षत्रों आदिका अध्ययन करके वर्षांपूर्व मौसमका पूर्वानुमान कर लेते थे। यद्यपि वैदिक संहिताओं, पुराणों, स्मृतियों में इस विज्ञानका उल्लेख मिलता है, फिर भी आचार्य वराहमिहिर का इसमें विशेष योगदान रहा है। उन्होंने अपने ग्रन्थ बृहत्संहिता में इस विषयपर विस्तार से प्रकाश डाला है। संहिता ग्रन्थों में तो ऐसे मन्त्रों का भी विधान है, जिनके द्वारा यथेच्छ रूप से वर्षा के आयोजन और निवारण को नियन्त्रित किया जा सकता है। ऋतुचक्र का प्रवर्तक सूर्य होता है। सूर्य जब आर्द्रानक्षत्र (सौरगणना) में प्रवेश करता है, तभी से औपचारिक रूप से वर्षा–ऋतुका प्रारम्भ माना जाता है। भारतीय पंचांगकार प्रतिवर्ष आर्द्रा प्रवेश–कुण्डली बनाकर भावी वर्षाकी भविष्यवाणी करते हैं। आर्द्रासे नौ नक्षत्र पर्यन्त वर्षा का समय माना जाता है। गर्ग, पराशर आदि ऋषियों के समय तो यह विज्ञान गुरु–शिष्य–परम्परा में रहा। कालान्तर में अनेक ज्योतिर्विदों द्वारा इसे सर्वसुलभ कराया गया ।

ग) व्यक्ति विषयक– यात्रा– शकुन, स्त्री पुरुष लक्षण का चिंतन इस विभाग के मुख्य विषय हैं।

शकुन शास्त्र – ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि में शकुन का भी बड़ा महत्त्व है । शकुन चाहे स्वप्न में हो या जाग्रत अवस्था में हो, अपने शरीरमें हो, चाहे संसार में, पशु–पक्षियों द्वारा हो या दिव्य शक्तियों द्वारा प्रत्येक दशामें उनका तात्पर्य है, हमें सावधान करना और आश्वासन देना। कोई भी व्यक्ति किसी कार्य का आरम्भ अथवा यात्रा आदिका प्रारम्भ सफलता की दृष्टिसे शुभ मुहूर्त में करना चाहता है, इसके साथ ही शकुन देखने की भी परम्परा है। शकुन शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के होते हैं। शुभ मुहूर्त में शुभ शकुन के प्राप्त होने पर यात्रा अथवा कार्य आदि की सफलता निश्चित हो जाती है। जो व्यक्ति यात्रा करता है अथवा कार्य प्रारम्भ करता है, वह शुभ शकुन प्राप्त होने पर कार्य की सफलता के लिये मानसिक रूप से पूर्ण आश्वस्त हो जाता है और प्रायः परिणाम भी अनुकूल होते हैं। इस प्रकार जीवन में शकुन की महिमा कम नहीं है।

वर्तमान समय में बहुत सारे शुभ शकुन तथा अशुभ शकुन किंवदन्तियों पर भी आधारित हैं। ये किंवदन्तियाँ प्रायः शकुनशास्त्र के अनुसार परम्परा से बँध गयी हैं। सामान्यतः यात्रा के समय सवत्सा गौ सामनेसे आती हो, सौभाग्यवती स्त्री अपने पुत्रको गोदमें लेकर आती हो, किसी वृद्ध व्यक्तिका शव समारोह पूर्वक बाजे–गाजे के साथ आता हो, जलसे भरे हुए दो घड़े मार्गमें मिलते हों अथवा दहीसे पूर्ण पात्र दिखे तो इन्हें अपने दाहिनी ओर करके जाने पर यात्रा शुभ होती है। ये शुभ शकुन हैं। इसी प्रकार अशुभ शकुनों की भी सूची है। यात्रा के समय यदि हैं कोई एकचक्षु (काना) व्यक्ति मार्ग में मिल जाय, कोई नाई अपने औजार के डिब्बे के साथ मिल जाय, कोई विधवा ब्राह्मणी, खाली घड़ा आदि मार्गमें मिल जाय अथवा कोई छींक दे तो अशुभ शकुन की सूचना मानी जाती है और प्रायः इसक अशुभ परिणाम होते भी हैं।

इसके अतिरिक्त पशु–पक्षियों के द्वारा भी शुभ या अशुभ काल की सूचना प्राप्त होती है । जैसे दशहरा या दीपावली पर नीलकण्ठ पक्षी का दर्शन, सवत्सा गोमाता का दर्शन, नेवले का दर्शन, मीनयुग्म (मछलियाँ) आदि के दर्शन – शुभ होते हैं। इसी प्रकार

हिरण, नाग आदि के दर्शन भी शुभ माने जाते हैं। गिरगिटके स्पर्श होने पर, छिपकली के शरीर पर गिरने पर शुभ–अशुभ दोनों प्रकार के फल होते हैं। दाहिने अंगपर पड़ने से शुभ की सूचना मिलती है तथा बायें – अंगपर पड़ने पर अनिष्ट का संकेत मिलता है। पशु– पक्षियों से अशुभ की सूचना भी मिलती है–बिल्ली द्वारा रास्ता काटे जाने पर, कुत्ते के कान फड़फड़ाने पर, कुत्ते एवं सियार के रोने पर, गिद्ध के मकान आदि पर बैठने से, कौवे के शोर मचाने पर अशुभ के संकेत प्राप्त होते हैं । पुरुष का दायाँ अंग तथा स्त्री का बायाँ अंग फड़कना शुभ होता है, इसके विपरीत अशुभ होता है। शकुन जब स्वाभाविक रूप में स्वतः होते हैं, तब इनका प्रभाव विशेष रूप में होता है। हिन्दू संस्कृति में शकुनशास्त्र का बहुत व्यापक प्रभाव है और यह एक प्रकार से अनुभूत विद्या है। इस विद्या का मूल भी ज्योतिष शास्त्र ही है ।

यात्रा–विचार– ज्योतिष शास्त्र में यात्रा हेतु विशेष विचार किया गया है।जब भी कभी मनुष्य किसी विशेष उद्देश्य हेतु यात्रा करता है तो उस यात्रा में वह सफलता प्राप्त करना चाहता है और कई बार देखा जाता है कि मनुष्य के द्वारा समुचित प्रयास के बाद भी सफलता प्राप्त नहीं होती है इसका कहीं न कहीं कारण यात्रा का आरंभ उचित काल विशेष में न करना भी माना जाता है ।इसीलिए ज्योतिष शास्त्र में यात्रा के लिए शुभाशुभ काल विशेष का चिंतन किया है जिससे कि मनुष्य की यात्रा सोद्देश्य पूर्ण हो सके । यात्रा के लिये वारशूल, नक्षत्र शूल, दिक्शूल, चन्द्रवास, और राशि से चन्द्रमा इत्यादि विषयों का विचार किया जाता है।

स्त्री–पुरुष लक्षण के फल विवेचन– ज्योतिष शास्त्र की अपनी विशेषता है कि शास्त्र में स्त्री पुरुष की आकृति, अंग विशेष की आकृति से उसके स्वभाव आदि का ज्ञान कराता है।इससे व्यक्ति की प्रकृति स्वाभाव इत्यादि को समझने में बहुत सहायता होती है। इस सामुद्रिक शास्त्र में भी बहुत सारे विषयों का समावेश है जैसे मुख की आकृति का फल, प्रकृति के अनुसार पुरुष लक्षण, भाग्यशाली पुरुष का लक्षण, स्त्री के लक्षण, ललाट की रेखा से आयु निर्णय, हाथ की रेखाओं से शुभाशुभ फल का कथन, पैर की रेखाओं से शुभाशुभ फल का विचार, विभिन्न अंगों पर तिल–मस्से का शुभाशुभ फल विचार इत्यादि विषयों पर विशद चिंतन शास्त्र में किया गया है जिनका वर्तमान समाज में अत्यंत महत्व है।

2.2.3 होरा स्कन्ध की समाज में उपयोगिता

सिद्धान्त एवं संहिता स्कन्धकी अपेक्षा सरल होने एवं साक्षात् समाज से सम्बद्ध होनेके कारण ज्योतिषशास्त्र के तीनों स्कन्धों में सर्वाधिक लोकप्रियता होरा स्कन्धकी है। मानव–जीवन के जन्म से लेकर मृत्यु–पर्यन्त सभी प्रश्नों का समाधान जन्मकालिक एवं प्रश्नकालिक ग्रहस्थिति के आधार पर होरा स्कन्ध के द्वारा किया जाता है। यह स्कन्ध मानव–जीवन के सम्भाव्य अशुभों को ग्रह–नक्षत्रों के द्वारा जानकर उनके निवारण हेतु वेदविहित समाधान प्रस्तुत करता है। होरा शब्दकी उत्पत्ति अहोरात्र से होती है, जो कि दिनसूचक शब्द है। अहोरात्र के पूर्व और पर वर्णके लोप करनेसे 'होरा' शब्द बनता है–

'होरेत्यहोरात्र विकल्पमेके वाञ्छन्ति पूर्वापरवर्णलोपात्'

(बृहज्जातक–राशिप्रभेदाध्याय –श्लोक संख्या–03)

होरा स्कन्ध में मेषादि द्वादश राशियों, सत्ताईस नक्षत्रों एवं सूर्यादि नवग्रहों की परस्पर स्थिति–गति–दृष्टि–योगसम्बन्धवशात् मानवमात्र पर पड़ने वाले शुभाशुभ फल का पूर्ण विवरण समाहित है। अतः इसे जातकशास्त्र भी कहा जाता है। कुछ विद्वानों का कथन है कि जब पूर्वजन्मार्जित शुभाशुभ कर्मो के फल की प्राप्ति अवश्यम्भावी है तो उसका

ज्ञान कराने वाले होरास्कन्ध की क्या आवश्यकता ? क्योंकि जो होना है, वह तो होकर ही रहता है, परंतु ऐसा नहीं है। सम्पूर्णरूप से भाग्य के भरोसे बैठकर ही यदि कृषक खेती करना छोड़ दे तो अन्नादिकी उत्पत्ति कैसे होगी? नीतिवचनों में भी कहा गया है–**'न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।'** होराशास्त्र कर्मप्रधान शास्त्र है, जो पूर्वजन्मार्जित कर्मों के फल को क्रियमाण कर्म के द्वारा न्यूनाधिक करने में विश्वास रखता है।जहाँ पर जन्मपत्रिकादि से दशाफलकालक्रम द्वारा रोगसम्भावना या अरिष्ट की सम्भावना है अथवा जब सन्तान, विद्या, धनादि का अभाव होने का कारण प्रकट होता है, वहाँ ग्रहशान्ति, मणिधारण, मन्त्रजप, दान, औषधिधारण आदि उपचारों से प्रतिबन्धक योगों को शिथिल करने का प्रयास किया जा सकता है। जिस प्रकार दृढमूलवृक्ष भी प्रबल वायु वेग से हिलकर जीर्ण या कमजोर हो जाता है, उसी प्रकार दृढ़कर्मों का अशुभ फल भी कम तो अवश्य किया जा सकता है। इसीलिये सूक्ति है–**'हन्यते दुर्बलं दैवं पौरुषेण विपश्चिता' (होरारत्न)**। शुभाशुभफलप्रद भाग्य कब फलीभूत होगा? अपना पूर्ण फल देगा अथवा कुछ कम? इत्यादिका ज्ञान भी होराशास्त्र से ही सम्भावित है। यह शास्त्र शुभाशुभफल– में कर्म को जन्मकुण्डली के लग्नादि द्वादशभावों में स्थित स्वोच्च, मूलत्रिकोण, स्वगृह, मित्रगृहादि शुभ स्थानों अथवा शत्रुगृह, नीचगृह, अस्तादि अशुभ स्थानों या स्थितियों में स्थित नवग्रहों के परस्पर शुभाशुभ सम्बन्धों के आधार पर दशान्तर्दशादि के माध्यम से दिन, पक्ष, मास, वर्षादि के रूपमें सूचित करता है। इसके आधार पर शुभाशुभ–अवस्था में मनुष्य यथासम्भव जागरूक होकर मणि, मन्त्र, औषधि आदि उपायों से अशुभफल को न्यून तथा शुभ ग्रह के बल में वृद्धि करके सत्फल प्राप्त कर सकता है। इसीलिये कल्याणवर्मा का दैवज्ञों के लिये निर्देश है–

विधात्रा लिखिता यस्य ललाटेऽक्षरमालिका।
दैवज्ञस्तां पठेत् प्राज्ञः होरानिर्मलचक्षुषा।।

(सारावली २।१)

होराशास्त्र के ज्ञानसे मनुष्य भावी सुख–दुःखादि का ज्ञानकर अपने पौरुष से उसे अनुकूल बना सकता है। यह शास्त्र मनोवैज्ञानिक रूपसे उसे दुःखादि अशुभ परिस्थितियोंको झेलने में सम्बल प्रदान करता है। इस प्रकार प्राणिमात्रपर पड़नेवाले शुभाशुभ प्रभावका अध्ययनकर फलकथन करना एवं मानवजीवनसे सम्बन्धित विभिन्न पहलुओंका अध्ययनकर उसे समुचित मार्गदर्शन देना ही होराशास्त्र की लोकोपयोगिताको सिद्ध करता है। इसी प्रकार जातककी अभिरुचि, दक्षता, स्वभावादिका विश्लेषण करके उसे भावी जीवनमें अपने कार्यक्षेत्र का चुनाव करने में सहायक सिद्ध हो सकता है। अतः जातकशास्त्रकी लोकोपयोगिताको द्योतित करते हुए आचार्य कल्याणवर्माका कथन है–

अर्थार्जने सहायः पुरुषाणामापदणवे पोतः।
यात्रासमये मन्त्री जातकमपहाय नास्त्यपरः। ।

(सारावली२।५)

2.3 ज्योतिष शास्त्र के अन्य प्रमुख विषयों की समाज में उपयोगिता

ज्योतिष शास्त्र के वैसे सभी विषय उपर्युक्त तीनों स्कंधों में समाहित होते हैं तथापि आज अन्य कई विषयों का चिंतन विशद रूप से पृथक भी कर सकते जिसमें रत्न विज्ञान, ज्योतिष शास्त्र का चिकित्सा क्षेत्र में योगदान आदि को हम विस्तृत रूप से समझने का प्रयास प्रस्तुत उपखंड के माध्यम से करते हैं।

2.3.1 रत्न विज्ञान की उपयोगिता

रत्न शब्द की अवधारणा एवं प्रयोग सर्वप्रथम ऋग्वेद में प्राप्त होता है हम निश्चित रूप से हम यह कह सकते हैं कि भारतीय मनीषियों के पास रत्न से संबन्धित पूर्ण जानकारी थी। वर्तमान समय में हम सभी देखते हैं कि रत्न विद्या का प्रचलन "जेमोलजी" के नाम से सभी जगह प्रचार प्रसार हो गया है । रत्न व रंगों का प्रचलन अब आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का भी प्रमुख अंग बन गया है । जेम–थेरेपी, कलर थेरेपी, कलर बाथ विभिन्न रंगों की शीशियों में पानी भरकर उससे स्नान कराने का प्रचलन भारत एवं विदेशों में भी खूब बढ़ गया है। कुछ लोगों की धारणा है कि रत्न, ताबीज, लाकेट आदि पहनने का प्रचलन यूनान, मिस्त्र, चीन या यवन देशों में आरंभ हुआ, जबकि यह सत्य नहीं हैं । इन सभी का आधार भी ज्योतिष शास्त्र ही है ।

हम सभी जानते हैं कि मानव किसी भी संप्रदाय विशेष का हो पर उस पर रत्नों का अवश्य प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार सूर्य की किरणें मानव मात्र को बिना किसी भेदभाव के ऊर्जा व प्रकाश प्रदान करती हैं।उल्लू या चमगादड़ सूर्य के ओजस्वी प्रकाश को अनदेखा करते हुये भी उसकी ऊर्जा (ऊष्मा) का अनुभव करते हैं ठीक उसी प्रकार से रत्न विज्ञान की भी उपादेयता है । रत्नों से निकालने वाली चुम्बकीय तरंगे मानव जीवन को प्रभावित करती हैं। सूर्य की किरणों में सात रंग छुपे होते है प्रत्येक रंग एक विशेष प्रकार की रश्मिपुंज द्वारा मानवीय जीवन को अपने प्रतीक आवर्तन– परावर्तन स्पन्दन व स्पर्श से प्रभावित करता है । रत्नों में ये रंग रश्मियां घनीभूत अवस्था में होती है। जिसके कारण रत्न संबन्धित कमजोर ग्रह की न्यून रश्मियों (जीवाणुओं) को पुष्टता प्रदान कर उस ग्रह की प्रभाव शक्ति को बड़ाता है । विभिन्न ग्रहों के लिए पृथक–पृथक रत्न बताए गए हैं यथा मुहूर्तचिन्तामणिग्रन्थ के अनुसार –

माणिक्यमुक्ताफलविद्रुमाणि गारुत्मकं पुष्पकवज्रनीलम् ।
गोमेदवैदूर्यकमर्कतः स्यू रत्नान्यथो ज्ञस्य मुदे सुवर्णम् ।

(मुहूर्तचिन्तामणि– गोचरप्रकरण– श्लोक संख्या–10)

सूर्य की प्रसन्नता के लिए माणिक्य, चन्द्रमा के लिए मोती, मंगल के लिए मूंगा, बुध के लिए पन्ना, गुरु के लिए पुष्पराग, शुक्र के लिए हीरा, शनि के लिए नीलम, राहु के लिए गोमेद तथा केतु के लिए वैदूर्य (लह–सुनियाँ) धारण करना चाहिये। इनके अतिरिक्त बुध की प्रसन्नता के लिए सोना भी धारण किया जाता है । यदि मूल्यवान रत्नों को धारण करने का सामर्थ्य न हो तो स्वल्प मूल्य वाले रत्नों को धारण करने के लिए ग्रहानुसार रत्न बतलाये गये हैं। राहु और केतु की प्रसन्नता के लिए लाजावर्त, शुक्र और चन्द्रमा के लिए चाँदी, गुरु के लिए मोती, शनि के लिए लोहा तथा मंगल और सूर्य के लिए मूंगा धारण करना चाहिये ।

धार्यं लाजावर्तकं राहुकेत्वो रौप्य शुक्रन्द्वोश्च मुक्ता गुरोस्तु ।
लोहं मन्दस्यार–भान्वोः प्रवालं............. ।।

(मुहूर्तचिन्तामणि गोचरप्रकरण –श्लोक संख्या 11)

2.3.2 ज्योतिष और आयुर्वेद (चिकित्सा विज्ञान)

आयुर्वेद अत्यन्त प्राचीन शास्त्र है। भारतीय संस्कृति के आधारस्तम्भ वेदोंमें ऋग्वेद सर्वप्रथम परिगणित है। इसके अन्तर्गत ज्योतिष एवं चिकित्सा विज्ञान का भी सांगोपांग वर्णन किया गया है। दोनों एक–दूसरे के पूरक एवं एक–दूसरेपर निर्भर हैं। जन्मलग्न के द्वारा यह ज्ञात हो सकता है कि व्यक्ति में किन आधारभूत तत्त्वों की कमी रह गयी,

इसी ज्ञान के बलपर ज्योतिषी पहले ही भविष्यवाणी कर देता है कि इस व्यक्ति को अमुक अवस्था में अमुक रोग होगा। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार विभिन्न ग्रह निम्न शरीर रचनाओं को नियन्त्रित करते हैं–

१. सूर्य– अस्थि, जैव–विद्युत, श्वसनतन्त्र, नेत्र।

२. चन्द्रमा– रक्त, जल, अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ (हार्मोन्स), मन।

३. मंगल– यकृत, रक्तकणिकाएँ, पाचनतन्त्र।

४. बुध–अंग–प्रत्यंग–स्थित तन्त्रिकातन्त्र, त्वचा।

५. बृहस्पति– नाडीतन्त्र, स्मृति, बुद्धि।

६. शुक्र– वीर्य, रज, कफ, गुप्तांग।

७. शनि– केन्द्रीय नाडीतन्त्र।

८. राहु एवं केतु–शरीर के अन्दर आकाश एवं अपानवायु।

ग्रहदोष के अनुसार ही विभिन्न वनौषधियाँ ग्रहबाधा का निवारण करती हैं तथा ओषधि मिश्रित जल से स्नान करनेसे भी ग्रहदोष दूर होते हैं। विभिन्न रत्नों को धारण करनेसे भी ग्रहबाधाएँ नष्ट होती हैं। शरीर में वात–पित्त एवं कफ की मात्रा का समन्वय रहने पर शरीर साधारणतया स्वस्थ बना रहता है। इनकी न्यूनाधिक मात्रा शरीर में रोग उत्पन्न करती है। सूर्य पित्तदोष, चन्द्रमा कफ एवं वातदोष, मंगल–पित्तदोष, बुध त्रिदोष, बृहस्पति कफदोष एवं शनि वातदोष उत्पन्न करता है। मानवजीवन की अपनी विशेषता है। इसके आधारभूत धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष–इन चार पुरुषार्थों की प्राप्ति का मुख्य साधन मनुष्य का शरीर है। इसे निरामय एवं कार्यकुशल रखना व्यक्ति का प्रथम कर्तव्य है।

जन्मपत्री पूर्वार्जित कर्मों को जानने की कुंजी है। पूर्वकृत किस कर्म से मनुष्य को कौन–सी व्याधि होगी– इसका ज्ञान मनुष्य को ज्योतिषविद्या से ही प्राप्त होता है। ज्योतिष में रोगों की जानकारी प्रायः जातक की जन्मकुण्डली से होती है। इसके अतिरिक्त हाथ की रेखाएँ, हाथ के पर्वत एवं नाखूनों के अध्ययन से भी रोग–ज्ञान हो जाता है। अनेक शताब्दियों से ज्योतिर्विद्या का औषधियों के साथ सम्बन्ध माना गया है। पूर्वकाल में किसी भी वैद्य के लिये यह आवश्यक था कि वह ज्योतिषी भी हो। सम्प्रति यह प्रसन्नता का विषय है कि विकसित देश भी ज्योतिर्विद्या का उपयोग चिकित्सा में करने लगे हैं ।

2.4 सारांश

वर्तमान काल में समाज में ज्योतिष शास्त्र की उपयोगिता हमने विस्तृत रूप में समझा। ज्योतिष शास्त्र में ऐसे कई विषय विद्यमान जो प्रतिपल मानव समाज के लिए उपयोगी है। ज्योतिष शास्त्र के समस्त विषयों का समावेश तीनों स्कंधों में हो जाता है। ये सिद्धान्त–संहिता और होरा नामक स्कन्ध पृथक्–पृथक् रूप से मानव कल्याण हेतु मार्गदर्शन करते है। जहां सिद्धान्त स्कन्ध अपनी वैज्ञानिकता के कारण पूर्ण रूप से अनादि काल से इस युग में वैज्ञानिक अंशों का प्रतिपादन कर रहा है, तो वहीं संहिता स्कन्ध के माध्यम से समस्त संसार पर पड़ने वाले प्रभाव के माध्यम से जनकल्याण का मार्ग प्रशस्त हो रहा है, उसी प्रकार व्यक्ति विशेष की समस्याओं का यथोचित समाधान होरा स्कन्ध के माध्यम से होता है। मनुष्य के आज भी समस्त कार्य ज्योतिष के द्वारा ही चलते हैं। व्यवहार के लिए उपयोगी दिन, सप्ताह ,पक्ष मास, अयन, ऋतु, उत्सव, पर्व, इत्यादि का ज्ञान विभिन्न संस्कारों का मुहूर्त, चिकित्सा ज्योतिष, ग्रहों का

वेधशालाओं के माध्यम से दर्शन, पंचांग गणित, विभिन्न उत्पातों का पूर्वानुमान, करियर काउन्सलिग में सहयोग, वर्षा ज्ञान, रत्न विज्ञान, गणित शास्त्र, आदि विषयों का ज्ञान हमें ज्योतिष शास्त्र के माध्यम से ही होता है अतः समाज में ज्योतिष शास्त्र की सर्वाधिक उपयोगिता है।

2.5 शब्दावली

स्कन्ध – ज्योतिष शास्त्र के अंग का पर्याय पद ।

सिद्धान्त स्कन्ध – ज्योतिष शास्त्र के ग्रह स्पष्टीकरण आदि विषयों का ज्ञान कराने वाला स्कन्ध ।

संहिता स्कन्ध – समष्टिगत फल निरूपण प्रक्रिया का प्रतिपादन।

होरा स्कन्ध – व्यक्तिगत फल निरूपण प्रक्रिया का उपस्थापन।

अहोरात्र – दिन और रात्रि को अहोरात्र कहा जाता है अर्थात् पूर्ण दिन।

2.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

पुस्तक (ग्रंथ) का नाम		ग्रंथ कर्ता का नाम
1. सिद्धान्तशिरोमणि	–	भास्कराचार्य
2. बृहत्संहिता	–	वराहमिहिर
3. बृहज्जातक	–	वराहमिहिर
4. आर्यभटीय	–	आर्यभट्ट
5. भारतीय ज्योतिष	–	शिवनाथ झारखंडी
6. मुहूर्तचिंतामणि	–	श्री रामदैवज्ञ
7. सिद्धान्त ज्योतिष मंजूषा	–	प्रो0 विनय कुमार पाण्डेय

2.7 बोधप्रश्न

1. सिद्धान्त स्कन्ध की समाज में उपयोगिता को बताइये ।
2. होरा स्कन्ध की समाज में उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।
3. ज्योतिष शास्त्र का संहिता स्कन्ध किस प्रकार से समाज के लिए उपयोगी है।
4. रत्न विज्ञान के बारे में संक्षेप में लिखिए।
5. प्रस्तुत इकाई का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।